P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
E: ISSN NO.: 2349-980X Vol-III* Issue-XI*July-2016

कौटिल्य के शत्रु राज्य पर आक्रमण विषयक विचार

दिनेश कुमार चारण
व्याख्याता,
इतिहास विभाग,
राजकीय लोहिया महाविद्यालय,
चूरु,राजस्थान

सारांश

किसी भी देश काल में विभिन्न राज्यों में युद्ध की संभावनाएं बनी ही रहती है। प्राचीन भारत के महान् कूटनीतिज्ञ कौटिल्य इसे भली भाँती समझते थे, अतः उन्होंने इस विषय पर अपने ग्रन्थ अर्थशास्त्र में विचार रखे हैं। सर्वप्रथम कौटिल्य चाहते थे कि अनावश्यक युद्ध से बचना चाहिए। इसके लिए वे कूटनीतिक प्रयासों को महत्त्वपूर्ण मानते थे। अतः उन्होंने अर्थशास्त्र में अपनी विदेश नीति में षाड्गुण्य (सन्धि, विग्रह, यान, आसन, संश्रय एवं द्वैदीभाव) को विशेष रुप से सम्मिलित किया है। षाड्गुण्य नीति के माध्यम से वे सर्वप्रथम सन्धि का प्रयास करते है और जब समस्त उपाय समाप्त हो जाए शत्रु हो तो ही आक्रमण करना चाहिए अन्यथा पड़ोसी राज्यों को स्वयं के अनुकूल बनाकर ही आक्रमण करने को उचित बताया गया।

मुख्य शब्द : कौटिल्य, अर्थशास्त्र, शाड्गुण्य, यातव्य, प्रकृतिमंडल।

प्रस्तावना

कौटिल्य के शत्रु राज्य पर आक्रमण विषयक विचार

आचार्य कौटिल्य प्राचीन भारत के एक महान चिन्तक थे, जिन्होंने आज से लगभग तेईस सौ वर्ष पूर्व अर्थशास्त्र नामक एक कालजयी ग्रन्थ की रचना की थी। अर्थशास्त्र राजनीति और प्रशासन का नियामक ग्रन्थ है। अर्थशास्त्र में ही कौटिल्य ने परराष्ट्र नीति को सफल बनाने के लिए षाड्गुण्य का उल्लेख किया है। उन्होंने अर्थशास्त्र के सातवें अधिकरण के प्रथम अध्याय में षाड्गुण्य को परिभाषित करते हुए लिखा है कि

तत्र पणबन्धः सन्धिः, अपकारो विग्रहः,
उपेक्षणमासनम् अभ्युच्चयो यानं, परार्पणं संश्रयः,
सन्धिविग्रहोपादानं द्वैधीभाव इति षड्गुणाः।

अर्थात्, 'दो राजाओं का कुछ शर्तों पर मेल हो जाना सन्धि, शत्रु का अपकार करना विग्रह, चढ़ाई करना यान, उपेक्षा करना आसन, आत्मसमर्पण करना संश्रय एवं सन्धि–विग्रह दोनों से काम लेना द्वैधीभाव कहलाता है, यही छः गुण षाड्गुण्य कहलाते हैं।' षाड्गुण्य मे से यान एक अतिमहत्त्वपूर्ण चरण माना जा सकता है, क्योंकि इस निर्णय के माध्यम से राजा शत्रु राज्य पर आक्रमण करता था। इसमें चूक होने का अर्थ स्वयं के राज्य की तबाही भी हो सकती थी।

यान के अर्थ को लेकर विद्वानों में कुछ संशय है। मणिशंकर प्रसाद मानते हैं कि यान विग्रह का ही एक अंग है।[1] वास्तव में यह विग्रह के बाद का चरण है। यान का अर्थ है, आक्रमण। लल्लनजी सिंह भी ऐसा ही मानते हैं।[2] मीनाक्षी जाशी लिखती हैं कि विग्रह की स्थिति के पश्चात अपनी शक्ति के अनुसार युद्ध के प्रयाण को यान कहा जाता था।[3] इस गुण को तभी अपनाया जाता था जबकि विजिगीषु (विजय का इच्छुक नीतिवान राजा) राजा की स्थिति सुदृढ़ हो और युद्ध ही एकमात्र विकल्प बचा हो। युद्ध से विनाश होता है।[4] अतः युद्ध ना हो, इसकी सम्भावनाएँ समाप्त होने पर ही आक्रमण किया जाना चाहिए। कौटिल्य का मत है कि यदि यातव्य (जिस पर आक्रमण किया जाना हो) और आक्रमणकारी शत्रु राजा के सामन्त आदि व्यसनग्रस्त हो जाए तो विजिगीषु को पहले शत्रु राजा पर आक्रमण करना चाहिए। उसको जीत लेने के बाद यातव्य पर आक्रमण किया जाए। क्योंकि विजिगीषु जब शत्रु राजा को जीत लेगा तो यातव्य स्वयं ही विजिगीषु के पक्ष में आ सकता है। लेकिन यदि विजिगीषु पहले यातव्य पर आक्रमण करके जीत भी लेता है तो भी शत्रु राजा विजिगीषु के पक्ष में कभी नहीं आएगा।[5]

कौटिल्य के मत से यदि ऐसी स्थिति हो कि यातव्य अधिक व्यसन से ग्रस्त है और शत्रु राजा को कम व्यसन है तो भी शत्रु राजा पर ही आक्रमण किया जाना चाहिए। क्योंकि यह भी सम्भव है कि शत्रु राजा अपने कम व्यसनों का प्रतीकार कर ले और यातव्य की सहायता के लिए तैयार हो जाए। शत्रु राजा पर पहले आक्रमण करने से व्यसनग्रस्त यातव्य से कोई खतरा भी नहीं हो

सकता है और इस अवधि में उसके व्यसन भी बढ़ते जाएँगें फिर उसे अधिक सरलता से पराजित किया जा सकेगा।[6] आचार्य के कथनानुसार विजिगीषु के समक्ष यदि ऐसी कोई स्थिति निर्मित हो जाए, जिसमें भारी विपत्ति से ग्रस्त न्यायकारी यातव्य, थोड़ी विपत्ति से ग्रस्त अन्यायकारी यातव्य और ऐसा यातव्य जिसका प्रकृति मंडल (मंत्री, सेना आदि) विरक्त हो गया हो; तो इन तीनों यातव्य शासकों में से विरक्त प्रकृति वाले यातव्य पर सबसे पहले आक्रमण करना चाहिए।[7] इसमें यदि पहले न्यायकारी यातव्य पर आक्रमण किया गया तो उसका प्रकृति मंडल प्राण–प्रण से सहायता करेगा और अन्यायकारी यातव्य पर आक्रमण किया गया तो उसका प्रकृति मंडल तटस्थ हो जाएगा जबकि विमुख प्रकृति मंडल शक्तिशाली शासक को भी नष्ट कर देता है। अतः विमुख प्रकृति मंडल वाले राजा पर ही सबसे पहले आक्रमण करना उचित माना जाता था।[8]

अर्थशास्त्र में एक स्थिति यह दर्शाई गई है कि लोभी प्रकृति–मंडल से युक्त यातव्य पर पहले आक्रमण किया जाए अथवा तिरस्कृत प्रकृति–मंडल वाले यातव्य पर। ऐसे में विजिगीषु को तिरस्कृत प्रकृति मंडल वाले पर ही पहले आक्रमण करना चाहिए क्योंकि लोभी प्रकृति मंडल अपने स्वामी से अनुराग रखता है और हो सकता है कि वे बहकावे में भी न आए।[9] कौटिल्य लिखते हैं कि यदि कोई यातव्य शक्तिशाली हो परन्तु उसका शासन अन्यायपूर्ण हो या यातव्य दुर्बल हो परन्तु उसका शासन न्यायपूर्ण हो तो पहले अन्यायकारी यातव्य पर आक्रमण करना चाहिए क्योंकि उसके अमात्य आदि प्रकृतिजन उसकी सहायता नहीं करते हैं और शत्रु से मिल भी जाते हैं। परन्तु न्यायकारी दुर्बल यातव्य का प्रकृति मंडल प्राण–प्रण से सहायता करता है और यदि ऐसा राजा दुर्ग छोड़कर चला जाए तो भी उसके कल्याण की कामना करता है।[10]

कौटिल्य के मतानुसार जब भी विजिगीषु राजा यह देखे कि शत्रु राजा और उसका प्रकृति मंडल भी व्यसनी है, शासन और सेना से प्रजा पीड़ित है, राजा स्वयं उत्साहहीन है और प्रकृति मंडल में परस्पर कलह है तथा शत्रु राजा अग्नि, जल, व्याधि और संक्रामक रोगों के कारण क्षीण हो चुका है तो ऐसी परिस्थितियों में अपकार करते हुए शत्रु पर आक्रमण कर देना उपयुक्त रहता था।[11] इसके अतिरिक्त जब विजिगीषु को लगे कि यदि मेरा राज्यमंडल शक्तिशाली है और शत्रु का राज्यमंडल विपत्ति में है तो ऐसी स्थिति में मित्र राजा के साथ अरिमित्र–मित्र को एवं आक्रंद (पीठ पीछे का मित्र राजा) के साथ पार्ष्णिग्राह (पीठ पीछे का शत्रु राजा) को भिड़ाकर शत्रु राज्य पर आक्रमण कर देना चाहिए।[12] परन्तु जब विजिगीषु राजा को यह लगे कि शत्रु अधिक शक्तिशाली है और अकेले युद्ध में

सफल होना संदिग्ध है तथा युद्ध भी आवश्यक है तो ऐसी स्थिति में अन्य राज्यों के साथ गठबन्धन कर लेना चाहिए।[13]

यदि एक ही राज्य पर आक्रमण करना हो तो सहायक राजाओं का हिस्सा तय कर देना चाहिए और अनेक राज्यों पर आक्रमण करना हो तो हिस्से का निश्चित किए बिना ही आक्रमण कर देना चाहिए।[14] शत्रु की जीत में बँटवारे का सबसे उत्तम तरीका यह रहता था कि प्रत्येक पक्ष को युद्ध में उसके हुए व्यय के अनुसार हिस्सा दिया जाए।[15] आचार्य के मत से संयुक्त युद्ध यात्रा में मित्र, हिरण्य और भूमि में से उत्तरोत्तर लाभ श्रेष्ठ होता था, क्योंकि भूमिलाभ से शेष दो लाभ एवं हिरण्य लाभ से मित्र लाभ सुलभ किया जा सकता था।[16] विजिगीषु राजा का यह दायित्त्व होता था कि

कृतार्थस्तु स्वयं नेता विसृजेत सामवायिकान्।
अपि जीयेत न जयेन्मण्डलेष्टस्तथा भवेत्।।[17]

अर्थात् 'युद्ध में सफलता प्राप्त करने के बाद अपने सहायक मित्र राजाओं को उनका उचित हिस्सा देकर उनको सन्तुष्ट करके सम्मानपूर्वक विदा करे चाहे स्वयं को अल्प लाभ ही मिले।' ऐसा करने से विजिगीषु अपने राज्यमंडल का प्रिय पात्र हो जाता था।[18]

आचार्य लिखते हैं कि विजिगीषु राजा को गठबन्धन करने से पूर्व सहायक राजाओं की शक्ति और पवित्रता को परख लेना चाहिए।[19] वे, एक अधिक शक्तिशाली राजा की अपेक्षा कम शक्ति वाले दो राजाओं से गठबंधन करना अधिक उपयुक्त समझते थे।[20] उनके मत से अधिक शक्तिशाली राजा से हमेशा विजिगीषु को दबकर ही रहना होगा जबकि समान शक्ति संबंध में ऐसी समस्या नहीं रहती थी। एक सुगमता यह भी थी उन दो समान शक्ति वाले राजाओं के मध्य अपनी सुविधानुसार फूट भी डाली जा सकती थी।[21] कौटिल्य के कथनानुसार यदि कभी विजिगीषु को अधिक शक्तिशाली राजा से गठबंधन करना पड़ जाए तो आक्रमण की सफलता के बाद जो भी हिस्सा मिले या कुछ न मिले तो भी अप्रसन्नता न दिखाए परन्तु बाद में उसकी किसी निर्बलता पर प्रहार कर दुगुना धन वसूलने का प्रयास करना चाहिए।[22]

कौटिल्य लिखते हैं कि राजा को अपने आचरण से प्रकृति आदि के साथ समुचित व्यवहार का प्रदर्शन करना चाहिए।[23] राजा द्वारा आचार्य, पुरोहित, अध्यक्ष आदि सम्माननीय व्यक्तियों का तिरस्कार करने से; समाज व राज्य के लिए अनुचित तत्त्वों को बढ़ावा देने से, मिथ्या बातों से वृद्ध पुरूषों में परस्पर विरोध कराने से; किसी के उपकार को न मानने से; नित्य कार्यों की अवहेलना करने से तथा राजा के प्रमाद एवं आलस्य से योग (किसी वस्तु की प्राप्ति) एवं क्षेम (प्राप्त वस्तु की रक्षा) का नाश होने से अमात्य आदि प्रकृतिजनों का क्षय हो जाता है।[24] ऐसे राजा के प्रकृतिजन लोभी भी हो जाते हैं एवं उनमें अपने स्वामी के प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न हो जाती है। राजा की तरफ से उदासीन लोभी प्रकृतिजन शत्रु से मिल जाते हैं या स्वयं ही राजा का वध कर डालते हैं।[25] इसलिए नीतिनिपुण विजिगीषु को चाहिए कि वह अपने प्रकृतिजनों में क्षय, लोभ और वैराग्य के कारणों को उत्पन्न ही न होने दे। यदि किसी कारण वे कारण दृष्टिगत होने लगे तो तुरन्त प्रतिकार करें और उपचार न किया जा सके तो शत्रु पर आक्रमण कदापि न किया जाए क्योंकि राजभक्त प्रकृति मंडल से सम्पन्न विजिगीषु ही युद्ध में सफलता प्राप्त करता है।[26]

उद्देश्य

किसी राज्य को आक्रमण करने से पूर्व अपनी आन्तरिक एवं बाह्य स्थिति की सन्पूर्ण जानकारी प्राप्त करके अपनी शक्ति के मूल्यांकन करने के पश्चात् ही आक्रमण का निर्णय लेना चाहिए। यही अध्ययन का प्रयोजन है।

निष्कर्ष

निष्कर्ष में कहा जा सकता है कि कौटिल्य अति आवश्यक होने पर ही युद्ध के पक्ष में थे। वे युद्ध को विनाषक मानते थे। उनकी दृष्टि में विजिगीषु शत्रु पक्ष पर तब ही आक्रमण करे जबकि शत्रु पक्ष दुर्बल हो और अन्तर्राज्य परिस्थितियाँ स्वयं के अनुकूल हो। इसकी प्रासंगिकता शाश्वत है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. प्रसाद, मणिशंकर : कौटिल्य के राजनीतिक एवं सामाजिक विचार, पृष्ठ संख्या 109
2. सिंह, लल्लनजी : कौटिल्य का युद्ध दर्शन, पृष्ठ संख्या 90
3. जोशी, मीनाक्षी : कौटिलीय राज्यशास्त्र, पृष्ठ संख्या 349
4. शामशास्त्री, आर. : कौटिल्या अथशास्त्र, 7/2/1
5. वही : 7/5/1
6. वही : 7/5/2
7. योगी, श्रीभारतीय : कौटिल्य अर्थशास्त्र, 7/5
8. शामशास्त्री, आर. : पूर्वोक्त, 7/5/3
9. वही : 7/5/4
10. वही : 7/5/5
11. शास्त्री, उदयवीर : कौटलीय अर्थशास्त्र, 7/4/29
12. वही : 7/4/32
13. वही : 7/4/34
14. गैरोला, वाचस्पति : कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, 7/4
15. शास्त्री, उदयवीर : पूर्वोक्त, 7/4/39
16. वही : 7/9/1–2
17. वही : 7/5/67
18. योगी, श्रीभारतीय : पूर्वोक्त, 7/5
19. शामशास्त्री, आर. : पूर्वोक्त, 7/5/12
20. वही : 7/5/13
21. शास्त्री, उदयवीर : पूर्वोक्त, 7/5/56–57
22. वही : 7/5/66
23. वही : 7/5/40
24. शामशास्त्री. आर : पूर्वोक्त, 7/5/6
25. योगी, श्रीभारतीय : पूर्वोक्त, 7/5
26. गैरोला, वाचस्पति : पूर्वोक्त, 7/5